17 शिक्षा में संस्थागत संस्कृति – कर्नाटक के शैक्षणिक नेतृत्व विकास कार्यक्रम से कुछ सबक

सुपर्णा दिवाकर



विभिन्न नीति–दस्तावेजों में शिक्षा के उद्देश्यों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है: सभी बच्चों को अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करना; बच्चों को भारत के लोकतान्त्रिक ढाँचे में सक्रियता से और जिम्मेदारी के साथ भाग लेने के लिए तैयार करना; जानकारी पर आधारित विकल्प चुनने में उन्हें सक्षम बनाना; विकास और वृद्धि के अवसरों का लाभ उठा सकने में सक्षम बनाना; और अर्थपूर्ण गरिमामय जीवन जीने में समर्थ बनाना।

निष्पक्षता और भेदभावरहित समानता हमेशा इन सभी उद्देश्यों का अन्तर्निहित अंग रही है। देश भर की सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के पास कार्यनिर्देश है कि प्रत्येक बच्चे के लिए वे अनुभव उपलब्ध करवाए जाएँ जिनका होना इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिए आवश्यक है। यह कार्य विशेष तौर से स्कूली व्यवस्था के ढाँचे के माध्यम से किया जाना अपेक्षित है। छह दशकों से भी अधिक समय से हम यह प्रयास कर रहे हैं और अभी भी निर्धारित उद्देश्यों को हासिल करने से बहुत दूर हैं।

पिछले दो दशकों में शिक्षा का परिदृश्य तेजी से बदलता रहा है – आज हमारे पास *शिक्षा का अधिकार* है। शायद इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में जनसमुदाय की अपने बच्चों के लिए शिक्षा से अभिलाषाओं में बढ़ोतरी ही नहीं हुई, वह इन्हें पहले से अधिक जोर–शोर के साथ व्यक्त भी करने लगा है। हमने काफी प्रगति की है, फिर भी उद्देश्यों की ओर तेजी से बढ़ने के लिए हमारे प्रयासों की गति और गुणवत्ता, दोनों को बदलने की जरूरत है। अनेक शोध अध्ययन, परियोजनाएँ और कार्यक्रम यह ज्यादा प्रभावशाली तरीकों से करने के रास्ते तलाश रहे हैं। इनमें से कई यह दर्शाते हैं कि सफलता सम्भव है। पर इन्हें उपयुक्त तरीकों से एक विशेष पैमाने पर करना एक चुनौती रही है और उसके लिए एक अलग चर्चा की जरूरत है।

यह आलेख कर्नाटक में पिछले तीन वर्षों में लागू किए गए शैक्षणिक नेतृत्व विकास कार्यक्रम (एजुकेशन लीडरशिप डेवलपमेन्ट प्रोग्राम – ई.एल.डी.पी.) में हुए अनुभवों के आधार पर संस्थागत संस्कृति के आयाम को टटोलने की कोशिश करता है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसकी कल्पना, संरचना और लागू करने का काम कर्नाटक के सार्वजनिक शिक्षा आयुक्त के कार्यालय में सर्वशिक्षा अभियान सम्बन्धी नीति नियोजन इकाई (पॉलिसी प्लैनिंग यूनिट – पी.पी.यू.) तथा सेन्टर फॉर लीडरशिप एण्ड मैनेजमेंट इन पब्लिक सर्विसिज़ (सी.एल.ए.एम.पी.एस.) द्वारा किया गया है। इस कार्यक्रम को अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, यूनिसेफ तथा वर्ल्ड बैंक का सहयोग मिला है।

संक्षेप में, ई.एल.डी.पी. ने शिक्षा विभाग के उन कर्मचारियों की नेतृत्व एवं प्रबन्धन क्षमताओं को संवर्धित करने का प्रयास किया है जो स्कूल के सबसे नजदीक होते हैं। 'क्रमिक जलप्रपातीय मॉडल' के तहत इसके लिए सार्वजनिक शिक्षा विभाग के भीतर ही प्रबन्धन विकास सहयोगी (मैनेजमेंट डेवलपमेन्ट फैसीलिटेटर्स – एम.डी.एफ.) विकसित किए गए। फिर, इसके बाद के क्रम में इन प्रबन्धन विकास सहयोगियों ने 20 जिलों में ब्लॉक संसाधन व्यक्तियों (ब्लॉक रिसोर्स पर्सन्स – बी.आर.पीज़) और संकुल संसाधन व्यक्तियों (क्लस्टर रिसोर्स पर्सन्स – सी.आर.पीज़) को प्रशिक्षित किया। बी.आर.पीज़ और सी.आर.पीज़ ब्लॉक तथा क्लस्टर (क्लस्टर या संकुल 15–20 स्कूलों का समूह होता है) स्तर पर नियुक्त संसाधन व्यक्ति होते हैं। शिक्षा व्यवस्था के विकेन्द्रित ढाँचे में स्कूलों को शैक्षणिक और प्रशासनिक सहयोग प्रदान करने की महत्वपूर्ण भूमिका इन संसाधन व्यक्तियों की ही होती है।

प्रबन्धन विकास सहयोगी लगभग पाँच माह तक चलने वाले विकास कार्यक्रम से गुजरे हैं जिसमें जानकारी प्रदान करने के सत्र (इनपुट सैशन्स), क्षेत्र में काम करने के अवसर, पुनरावलोकन और चिन्तन शामिल हैं। अगले चरण में प्रबन्धन विकास सहयोगियों द्वारा ऐसा ही अनुभव बी.आर.पीज़. तथा सी.आर.पीज़. के लिए सम्भव बनाया गया है। इस अनुभव के तहत उन्होंने 17 सप्ताह की अवधि में अपनी भूमिका के अन्तर्गत, अपने प्रभावक्षेत्र में, गुणवत्ता सुधार परियोजनाएँ (क्वालिटी इम्प्रूवमेन्ट प्रोजेक्ट्स) लागू की हैं।

प्रबन्धन विकास कार्यक्रम और गुणवत्ता सुधार परियोजनाओं ने एक ऐसा ढाँचा दिया जिसने सी.आर.पीज़. और बी.आर.पीज़. के लिए

> *पिछले तीन वर्षों में इस व्यवस्था के साथ निकट से काम करने में यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि इन मुद्दों में से अनेक की जड़ें उस संस्कृति में हैं जिसके तहत यह विभाग और व्यवस्था चलते हैं। उदाहरण के लिए, इस व्यवस्था में विकेन्द्रीत संस्थाएँ हैं जो समय बीतने के साथ मोटे तौर से राज्य–स्तर पर कल्पित निर्णयों और कार्यक्रमों को लागू करने वाली संस्थाएँ बन गई हैं।*

गुंजाइश छोड़ी कि वे शिक्षा–प्रक्रिया को अनुप्राणित करने वाली आधार–कल्पना तथा मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में मौजूदा प्रक्रियाओं की पड़ताल कर सकें और समस्याओं को चिह्नित कर सकें। उसके बाद उन्होंने सम्बन्धित भागीदारों/हितधारकों (स्टेकहोल्डर्स) की सहभागिता के साथ प्रक्रिया में सुधार के विकल्पों और समाधानों की पड़ताल की। इस पद्धति से उभरने वाले स्वामित्व की मजबूत भावना, जिम्मेदारी और पारस्परिक जवाबदेही ने परिवर्तन के लिए निरन्तर जारी रह सकने वाले उपायों को लागू करना सम्भव बनाया है। इस प्रक्रिया में बने या सशक्त हुए सम्बन्धों ने बेहतर सम्प्रेषण, समझ और पारस्परिक भरोसे का माहौल तैयार किया है। यह सहकर्मी सी.आर.पीज़ और बी.आर.पीज़ के साथ–साथ स्कूल स्तर पर प्रधान–शिक्षकों और शिक्षकों के मामले में भी हुआ है।

इस ढाँचे ने पुनरावलोकन, चिन्तन और साथियों से सीखने के लिए व्यवस्थित अवसर प्रदान किए। निन्दा के भय से आजाद रहते हुए असफल प्रयासों के बारे में परस्पर बात कर पाने के फलस्वरूप न केवल सम्बन्धित सी.आर.पी. या बी.आर.पी. को, बल्कि उसके सहयोगियों को भी सीखने का अवसर मिला। इस ढाँचे ने सी.आर.पीज़ और बी.आर.पीज़ को असफलता के भय के बिना नए तरीके खोजने और जानकारी के आधार पर नपे–तुले जोखिम उठाने की 'स्वतन्त्रता दी'। सहयोगियों से सीखने के इन व्यवस्थित अवसरों ने उनके बीच भरोसा बनाया। सी.आर.पीज़ और बी.आर.पीज़ के बीच आपस में और स्कूलों के साथ, सहयोग से होने वाले कार्य प्रोजेक्ट की अवधि के बाद भी चलते रहे हैं।

इस कार्यक्रम का जोर व्यक्तिगत रूपान्तरण पर था, लेकिन गुणवत्ता सुधार परियोजनाओं ने छोटे–छोटे मगर महत्वपूर्ण तरीकों से सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू कर दी है। और ये तरीके दोहराए जाने की सम्भावना भी मौजूद है, यानी इन्हें बार–बार किया जा सकता है। जैसा डेमिंग ने कहा था, "व्यक्तिगत रूपान्तरण के बिना कुछ भी नहीं बदलता।"

संस्कृति या आचार–विचार मूल्यों, विश्वासों, मानकों, परम्पराओं, रीतियों, मान्यताओं, आदि का ऐसा संग्रह है जिसे किसी संगठन या संस्था द्वारा धीरे–धीरे एक लम्बी अवधि में निर्मित किया जाता है। विशेष रूप से शिक्षा के सन्दर्भ में, उद्देश्य तथा मूल्यों की साझा समझ, निरन्तर सीखने और स्कूल सुधार के लिए मानक, बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी, और व्यवस्था के भीतर की संस्थाओं तथा काम करने वालों के बीच सहयोगात्मक और सहकर्मी भावना के सम्बन्ध संस्कृति या आचार–विचार में शामिल होंगे। न्यूयॉर्क के एक स्कूल के प्रधानाचार्य जॉन कैपोज़ी ने संस्कृति को "छिपा हुआ पाठ्यक्रम" कहा है। संस्कृति या आचार–विचार का प्रभाव काम करने वालों के उत्साह पर पड़ता है, और उत्पादक क्षमता तथा चिन्तनशील व्यवहार (सतत सुधार) पर भी। शोध से प्रकट होता है कि किसी जिले में स्कूलों की संस्कृतियों तथा संस्थाओं के बीच सम्बन्धों के स्वरूप भी स्कूल के प्रदर्शन तथा उसके विकास पर प्रभाव डालते हैं।

शिक्षा विभाग विशाल जनादेश वाला एक ऐसा विराट संगठन है जिसे आन्तरिक और बाहरी, दोनों ओर से खींचतान और दबावों का सामना करना पड़ता है। जैसा कि हम सभी जानते हैं, इसमें भी वे बुराइयाँ हैं जो हमारी सभी सार्वजनिक व्यवस्थाओं में हैं। फिर भी, पिछले तीन वर्षों में इस व्यवस्था के साथ निकट से काम करने में यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि इन मुद्दों में से अनेक की जड़ें उस संस्कृति में हैं जिसके तहत यह विभाग और व्यवस्था चलते हैं। उदाहरण के लिए, इस व्यवस्था में विकेन्द्रीकृत संस्थाएँ हैं जो समय बीतने के साथ मोटे तौर से राज्य–स्तर पर कल्पित निर्णयों और कार्यक्रमों को लागू करने वाली संस्थाएँ बन गई हैं। इस बात का अहसास व्यवस्था में कार्यरत और उसके साथ काम करने वाले सभी लोगों को है। इसका एक कारण शायद संगठनों के प्रबन्धन में शामिल 'नियन्त्रण' का आयाम है। और किस तरह कोई ऐसे संगठन को नियन्त्रित कर सकता है जिसमें तीन लाख से ऊपर शिक्षक, 50,000 से अधिक स्कूल, और 8,000 अन्य कर्मचारी हैं?

> *यदि शिक्षा के उद्देश्य हासिल करने हैं तो सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के भीतर हमें किस प्रकार की संस्कृति, कैसा आचार–विचार चाहिए? यदि हम शिक्षा विभाग को कई संस्थाओं से मिलकर बना विभाग मानें तो इनमें से प्रत्येक संस्था में कैसी संस्कृति होनी चाहिए जो हमें शिक्षा की हमारी कल्पना की ओर बढ़ने में मदद करे?*

इससे एक प्रश्न खड़ा होता है – यदि शिक्षा के उद्देश्य हासिल करने हैं तो सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के भीतर हमें किस प्रकार की संस्कृति, कैसा आचार–विचार चाहिए? यदि हम शिक्षा विभाग को कई संस्थाओं से मिलकर बना विभाग मानें तो इनमें से प्रत्येक संस्था में कैसी संस्कृति होनी चाहिए जो हमें शिक्षा की हमारी कल्पना की ओर बढ़ने में मदद करे? इनमें से प्रत्येक संस्था को ऐसी संस्कृति निर्मित करने और उसे पोषित करने की जरूरत है जो शिक्षा के उद्देश्यों को हासिल करने में सहयोगी हो। इसका अर्थ है कि यदि बच्चे को बड़े होकर देश की राज्य–व्यवस्था में सक्रिय और जानकार भागीदार बनना है, और गरिमापूर्ण जीवन बिताना है, तो उसे अपने स्कूल और समुदाय में उस समाज के सूक्ष्म प्रतिरूप का अनुभव होना जरूरी है। इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि स्कूल

उसे ऐसे अनुभव के लिए आवश्यक ढाँचे और अवसर प्रदान करे। आवश्यक है कि स्कूल को मदद देने वाली संस्थाएँ, अर्थात वे सभी ढाँचे जो पदानुक्रम के अनुसार स्कूल से ऊपर स्थित हैं, शिक्षा की इस कल्पना के साथ, और उसका साकार होना सम्भव बनाने वाले मूल्यों के साथ तारतम्य में हों। साथ ही, उन्हें उस कल्पना को साकार करने के लिए जरूरी व्यवस्थाएँ और प्रक्रियाएँ निर्मित करना होंगी। आखिरकार, शिक्षा को लोक निर्माण विभाग से भिन्न प्रकार की संस्थागत संस्कृति की आवश्यकता होती है।

बहुत सम्भव है कि प्रभावी प्रदर्शन के लिए नियन्त्रण और आज्ञा–पालन पर भरोसा करने वाला शैक्षणिक संस्थान शिक्षा के अपने उद्देश्य को हासिल न कर पाए, क्योंकि शिक्षा का प्रयोजन अन्वेषण, समीक्षात्मक सोच, नए तरीकों और सृजनात्मकता से है, और इन सभी के लिए काफी लचीलेपन और जोखिम उठाने की आवश्यकता होती है। गैर–लचीले नियम (या ऐसे नियम जिनकी व्याख्या इस रूप में की जाती है) नवीनता और सृजनात्मकता को बाधित करते हैं। उदाहरण के लिए, एक सी.आर.पी. खोज करके अपने क्लस्टर की समस्याओं के नए और उपयुक्त समाधान ढूँढ़ सकती है, बशर्ते कि उसे लगे कि उसे ऐसा करने की छूट है। इसके लिए एक हद तक के भरोसे और साझा उद्देश्य पर आधारित मजबूत सम्बन्धों की जरूरत होती है; जाँच–पड़ताल की, और शायद गलतियाँ करने तथा सीखने की भी आजादी की जरूरत होती है। वह जिस प्रकार का सहयोग स्कूलों के साथ कर सकती है, और जिस प्रकार के सम्बन्ध वह स्कूल या समुदाय के साथ बना सकती है, उनसे जीवन्त और सक्रिय संस्कृतियाँ निर्मित करना सम्भव होगा। लेकिन यदि उसे मामूली कामों के लिए इधर से उधर दौड़–भाग करना पड़ती है, जैसा आज हो रहा है, तो उसका दिल और दिमाग उनमें नहीं लगता। विभाग के कुछ शिक्षाकर्मियों ने एक खुली चर्चा के दौरान इस बात को साफ तौर पर अभिव्यक्त किया कि विभाग उन्हें अपने हाथ–पैर समझता है, न कि दिल और दिमाग वाले व्यक्ति। ई.एल.डी.पी. में हमारा अनुभव यह रहा है कि जमीन से जुड़े शिक्षाकर्मियों को अपने स्तर के मुद्दों की गहरी समझ होती है और वे परिवर्तन के लिए आवश्यक संसाधन जुटाने में सक्षम होते हैं।

संस्थाओं और व्यक्तियों के बीच सहयोग की संस्कृति के चलते ऐसे संसाधनों को इकट्ठा करना सम्भव हो पाता है जो मुद्दों और चिन्ताओं के उपयुक्त समाधान ढूँढ़ने में सहायक हों, स्थानीय स्तर पर विश्लेषण के आधार पर सुधारों की योजनाएँ बनाने में मददगार हों। इससे योजनाओं को शिक्षाकर्मियों के बीच साझा जिम्मेदारी, अधिकार और जवाबदेही के साथ लागू करना भी सम्भव हो पाता है। जिस स्तर पर सुधार किए जाने हैं उस स्तर पर कुछ जोखिम उठाए बगैर, और सभी सम्बन्धित संस्थाओं के सहयोग के बिना, बेहतरी सम्भव नहीं है। ई.एल.डी.पी. के अनुभव ने एक छोटे लेकिन महत्वपूर्ण ढंग से हमारी जान–पहचान जमीनी स्तर की कुछ सम्भावनाओं से करवाई है।

निश्चित ही, सुधारों को बनाए रखने के लिए व्यवस्थागत सहयोग आवश्यक होता है। यहाँ चुनौती केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच सन्तुलन बनाने की है मगर इसके लिए कोई स्पष्ट उत्तर नहीं हैं।

सुपर्णा दिवाकर दो दशकों से भी अधिक समय से गैर सरकारी क्षेत्र में काम कर रही हैं। वे अदम्य चेतना और सैन्टर फॉर लीडरशिप एण्ड मैनेजमेन्ट इन पब्लिक सर्विसिज़, बंगलौर की संस्थापक सदस्य हैं। वर्तमान में इस सैन्टर में एजुकेशन लीडरशिप एण्ड मैनेजमेन्ट प्रोजेक्ट्स् की प्रोजेक्ट लीडर हैं। पिछले चार वर्षों से कर्नाटक में लागू किए जा रहे शिक्षा नेतृत्व विकास कार्यक्रम से वे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। सार्वजनिक सेवाओं के जनादेश में और भारत में समाज के रूपान्तरण में इन सेवाओं की भूमिका में उनका दृढ़ विश्वास है। उनसे suparna@c-lamps.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।